एक सार्वभौमिक विश्व में बचपन
(Childhood in a Globalising World)

बचपन को जीवन की एक महफूज और विशेषाधिकार प्राप्त अवधि के रूप में मंजूरी, आधुनिक कल्याणकारी राज्य के उदय के समकालिक थी, और यह सार्वभौमिकता पर विमर्श शुरू होने के कई दशक पहले की बात है। हालाँकि, इंटरनेट और पर्यटन जैसे सार्वभौमिकता के सर्वव्यापी उपकरणों (ubiquitous tools of globalisation) के प्रभावों ने वर्तमान में कल्याणकारी राज्य को कमजोर किया है और पहले से मौजूद "सुरक्षात्मक" घेरों के विघटन को प्रेरित किया है – ऐसे घेरे जहाँ शिक्षक और शिक्षा प्रणाली बच्चे और बाहरी दुनिया के बीच में मध्यस्थता का काम किया करते थे। सार्वभौमिकता के इससे भी अधिक दूरगामी प्रभावों, जैसे कि काम करने के तरीकों, बच्चे की परवरिश के तरीकों और परिवार की धारणा तक में देखे जाने वाले अप्रत्यक्ष बदलावों, और इन बदलावों के परिणामस्वरूप बचपन पर पड़ने वाले वास्तविक प्रभाव का व्यवस्थित तरीके से अध्ययन किया जाना अभी बाकी है।

कृष्ण कुमार

"सार्वभौमिकता" शब्द हमें जिस तरह के मुद्दों की चर्चा करने की मंजूरी देता है, वे शायद ही नए हैं। वास्तव में उनमें से कुछ तो काफी जाने-पहचाने हैं और विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में काफी ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। उदाहरण के लिए, अलग-अलग कालों में भौगोलिक रूप से दूर और अलग बसे समाजों और संस्कृतियों के बीच होने वाला सम्पर्क इतिहास में एक प्रमुख विषय रहा है। विजय और अधीनता, उपनिवेशवाद और संसाधनों का दोहन जैसे मुद्दे अर्थशास्त्र और राजनीतिक अर्थव्यवस्था, सामाजिक मानवशास्त्र या नृशास्त्र (anthropology) और विषयों की सीमाओं को लाँघकर किए जाने वाले तुलनात्मक अध्ययनों (comparative studies) के तहत किए जा रहे शोध और सिद्धान्त निर्माण (theory building) का बड़ा हिस्सा हैं। इन सभी मुद्दों को "सार्वभौमिकता" के रूप में सम्बोधित किए जाने वाले वर्तमान मुद्दों से अलग करना मुश्किल है। दरअसल प्राकृतिक संसाधनों के पूँजीवादी दोहन की तरफ पूरी दुनिया के झुकाव का मुद्दा लम्बे समय से विद्वानों की ओर से निरन्तर इतनी अभिव्यक्ति पा रहा है [उदाहरण के लिए, बारान (Baran) 1957; गैलिआनो (Galeano) 1998] कि वैश्वीकरण की चर्चा करते समय हम आजकल जिन प्रक्रियाओं के बारे में बात करते हैं वे शायद ही आरम्भिक (incipient) कहलाने लायक हैं। वैश्वीकरण की विषयवस्तु की न तो आर्थिक एवं राजनीतिक, और न ही

तकनीकी एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ नई हैं। फिर भी, यह शब्द यदि इतना टिकाऊ बना हुआ है, और कुछ लोगों को आकर्षित भी कर रहा है, तो इसका कारण यही हो सकता है कि यह शब्द समकालिक दुनिया के इतिहास में आई उस दरार या विच्छेद की धारणा की ओर ध्यान आकर्षित कराता है जो 1989 में सोवियत रूस के विनाश के साथ घटा। इस घटना के न केवल आर्थिक और सैन्य प्रभाव, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव भी जाहिरा तौर पर अनुमान से कहीं ज्यादा विशाल साबित हुए हैं, और ये अभी भी खुल रहे हैं। इसी तरह, 1990 के दशक का मध्य काल नागरिक उपयोग के लिए इंटरनेट की शुरुआत और उसके विस्तार की ओर इशारा करता है (अर्थात, यह बात सशस्त्र बलों द्वारा काफी लम्बे अरसे से उस तकनीकी के उपयोग की तुलना में कही जा रही है जिसपर इंटरनेट आधारित है)। इसके अलावा, आधुनिक दूरसंचार ने एक सदी से भी ज्यादा समय से सामाजिक इतिहास को आकार दिया है। इसलिए इंटरनेट को एक काल-विच्छेद के रूप में तो वर्णित नहीं किया जा सकता, फिर भी यह दूरगामी संचार की गति, परिमाण और प्रकृति में क्रान्तिकारी वृद्धि को चिह्नित करता है। इसके सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव जटिल और कई तरह के परिणाम पैदा करने वाले (generative) हैं।

एक तरफ पूर्वी ब्लॉक (East Bloc) और सोवियत संघ (USSR) का पतन, और दूसरी तरफ नागरिक उपयोग के लिए इंटरनेट की उपलब्धता, दोनों ने मिलकर ऐसा सन्दर्भ मुहैया कराया है जिसके अन्तर्गत पूरे विश्व में राज्य और बाजार के संस्थागत ढाँचों के बीच के सम्बन्ध बदल रहे हैं। इस परिवर्तन की मध्यस्थता गहरे पैठे हुए या ऐतिहासिक रूप से गढ़े गए सत्ता के सम्बन्धों द्वारा की जा रही है। यही वजह है कि तथाकथित अविकसित देश वैश्विक बाजारों की माँग के अनुसार अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का ढाँचागत समायोजन करने को मजबूर हुए हैं। हालाँकि इन बाजारों को "वैश्विक" कहा जाता है, वे मुख्य रूप से पूरी तरह विकसित दुनिया के अति-उपभोक्तावादी समाज में अवस्थित हैं। विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation – WTO) जैसे नए संस्थागत ढाँचों के ऊपर अशान्त एवं उत्तेजना भरे वातावरण में बातचीत चल रही है जोकि 1980 के दशक की शुरुआत से वैश्वीकरण पर हो रही बहसों की विशेषता है। संयुक्त राज्य अमरीका और यूनाइटेड किंगडम के नेतृत्व में राष्ट्रों के एक गठबन्धन द्वारा इराक पर आक्रमण के नतीजों ने और ईरान को दी जा रही धमकियों ने उस आवेशित (charged) वातावरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है जिसमें वैश्वीकरण की चर्चा हो रही है। जाहिर है यह चर्चा निष्पक्षता या बिना किसी दावों या जोखिम के नहीं हो रही है जिसकी कि आमतौर पर एक सामान्य अकादमिक चर्चा में उम्मीद की जाती है। इस बात को भी खारिज करना कठिन है कि इराक पर आक्रमण वैश्वीकरण में योगदान दे रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा वियतनाम पर आक्रमण के विपरीत, इराक युद्ध के पीछे राष्ट्रों का एक संगठन है और

इसके परिणाम इसमें सीधे-सीधे शामिल देशों सहित बहुत-से दूसरे देशों की भी राजनीति और अर्थव्यवस्था को आकार दे रहे हैं। इन सन्दर्भों में देखा जाए तो, वैश्वीकरण हमसे अपेक्षा करता है कि हम युद्ध के भूगोल को अलग तरीके से देखें। अब हमें पूरी दुनिया को प्रभावित करने के लिए किसी विश्वव्यापी युद्ध की जरूरत नहीं है।

बच्चे और बचपन (Children and Childhood)

यह संक्षिप्त पृष्ठभूमि वैश्वीकरण और बचपन के बीच सम्बन्धों की पड़ताल शुरू करने के लिए जितनी उपयोगी है, उतनी ही यह पृष्ठभूमि इस जाँच की या वैश्वीकरण के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं की किसी भी तरह की जाँच की आपातकालीन या तूफानी प्रकृति को इंगित करती है। इस बात की बहुत अधिक सम्भावना है कि हमारी पड़ताल के कई बिन्दु हमें अचम्भित करेंगे कि क्या वे वास्तव में प्रासंगिक हैं या वैश्वीकरण से सीधे सम्बन्धित हैं या नहीं। एक ऐसी प्रक्रिया के प्रभावों की पड़ताल के मापदण्ड दृढ़ता से तय नहीं किए जा सकते जो परिपक्व या पूर्ण होने से अभी बहुत दूर है। इसी तरह, यदि उस प्रक्रिया में खतरे का घटक भी हो, जो इसकी अपरिवर्तनीयता के खतरे से शुरू होता है – जिसपर वैश्वीकरण के विचारक कभी भी जोर डालने से नहीं चूकते – तब इसे शायद ही सामाजिक विज्ञान के विषयों के साथ सम्बद्ध भावहीन निष्पक्षता (या वस्तुनिष्ठता) के साथ सम्बोधित किया जा सकता है, खासतौर पर तब जब बात बचपन जैसे विषय की हो रही हो जो बहुत जोखिमग्रस्त वर्ग से सम्बन्धित है। यद्यपि बच्चे, वयस्क रिश्तों और सामाजिक लोकाचार को प्रभावित करते हैं, परन्तु ऐसी किसी सामाजिक परिघटना (sociodrama) में हम उन्हें जिस कार्यभार (agency) का श्रेय दे सकते हैं, वह शायद ही सक्रिय या स्वतंत्र स्वरूप की हो।

मानव इतिहास में आज तक बच्चों की चिन्ता किए बिना उनको बड़ा करना सम्भव नहीं हो पाया है, कम-से-कम शिशु अवस्था के दौरान तो बिलकुल भी नहीं। हालाँकि यह तर्क दिया जा सकता है कि बच्चों के लिए वयस्कों की प्रतिक्रिया से जुड़ी चिन्ता के बारे में किसी भी सामाजिक अध्ययन को जेंडर के प्रति सचेत दृष्टिकोण (gender-conscious view) रखने की आवश्यकता होगी। दरअसल जेंडर के नजरिए से वैश्वीकरण का अध्ययन शोध साहित्य का एक बड़ा भाग बन रहा है, जोकि अन्य बातों के अलावा, हमारे समय के सामाजिक अध्ययन में विधिगत (methodological) कारक के रूप में दृष्टिकोण या नजरिए के महत्त्व पर हमारा ध्यान खींचता है। इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसे लोग जो सामाजिक विज्ञानों के पुराने परिप्रेक्ष्य (paradigm) में, जो भावनाओं और दृष्टिकोण पर रोक लगाता है, वैश्वीकरण पर चर्चा जारी रखते हैं, उनसे बचपन जैसे विषयों पर कोई भी महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि पेश करने की उम्मीद

नहीं की जा सकती, भले ही वे अर्थशास्त्र के अपेक्षाकृत अधिक सटीक सामाजिक विज्ञान के विद्वान हों। यदि वे ऐसा करना चाहें तो, जो कि वर्तमान में पढ़े जाने वाले ज्यादातर अर्थशास्त्री नहीं चाहते, हमें वे ज्यादा-से-ज्यादा यह बता सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय एवं उप-राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन बच्चों को किस तरह प्रभावित कर रहे हैं – खासतौर पर वे आर्थिक सम्बन्ध जो काम और मजदूरी, प्राकृतिक संसाधनों और मानव सम्बन्धों तक पहुँच के सन्दर्भ में प्रकट हो रहे हैं। इस तरह की जानकारी शायद ही कभी एक सनसनी से ज्यादा कुछ और पैदा करती है, मुख्य रूप से इसलिए क्योंकि हम यह जानते ही नहीं कि इस जानकारी को ऐसे किस तरीके से आत्मसात करें जो कि किसी भी कमजोर वर्ग द्वारा सहे जाने वाले उत्पीड़न या हिंसा की खबर पर हमारी प्रतिक्रिया से अलग हो। राष्ट्रों या नृजातीय समूहों के बीच युद्ध या नए प्राकृतिक आवासों पर कॉरपोरेट कम्पनियों के कब्जे से हुए विस्थापन के बारे में बच्चों के अनुभवों को ध्यानपूर्वक समझने के लिए यह जरूरी है कि हम इस तरह की जानकारी की जाँच "बचपन" कही जाने वाली उस अवधारणा की मदद से करें जिसे वैश्वीकरण की चर्चाओं में बिरले ही इस्तेमाल किया जाता है। यह अभ्यास वैश्वीकरण के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल करने में विशेष रूप से उपयोगी होगा, जो निस्सन्देह बचपन से सम्बन्धित सबसे बड़ी आधुनिक चिन्ता का विषय है।

आधुनिक इतिहास में बचपन (Childhood in Modern History)

न केवल मानव इतिहास के ज्यादातर समय में, बल्कि आज भी दुनिया के कई हिस्सों में बच्चों को वयस्कों के छोटे रूप की तरह देखा जाता है, जिनकी कोई खास जरूरतें या विशेषताएँ नहीं होतीं। आज हम बच्चों के बारे में कैसे सोचते हैं इसका बहुत गहरा सम्बन्ध यूरोपीय प्रबोधन (European Enlightenment), औद्योगिक क्रान्ति और यूरोपीय शक्तियों द्वारा दक्षिणी गोलार्ध के देशों के औपनिवेशीकरण से है। हालाँकि बचपन के वैश्विक इतिहास के संकलन का प्रयास अभी तक नहीं हुआ है। फिर भी, यूरोप में बच्चों के साहित्य और नए शैक्षिक विचारों के उदय के बारे में जितनी सीमित जानकारी हमें उपलब्ध है, वह सुझाती है कि एक तरफ व्यक्तिवाद (individualism) एवं अन्य लोकतांत्रिक मूल्य, और दूसरी ओर एक शहरी सम्पन्न वर्ग का प्रादुर्भाव, ये दोनों बचपन के उन मानक विचारों से सम्बन्धित हैं जो आज तक व्यापक रूप से उससे जुड़े हैं। उदाहरण के तौर पर, बच्चों के अधिकारों के लिए बनाए गए संयुक्त राष्ट्र चार्टर के बारे में सोच पाना भी 19वीं और 20वीं सदी के दौरान स्कूली शिक्षा और कानून के सन्दर्भ में होने वाली उन लम्बी बहसों की अनुपस्थिति में नामुमकिन होगा जिनमें प्रगतिशील शिक्षकों और सुधारवादी विचारकों की पीढ़ियाँ शरीक रहीं। वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों द्वारा दिया गया योगदान भी समान रूप से मौलिक है क्योंकि इन्होंने यूरोपीय समाजों को शिशु मृत्यु दर पर

नियंत्रण पाने, सार्वजनिक स्वच्छता और सफाई में सुधार लाने और कुछ आम बीमारियों का उन्मूलन करने में सक्षम बनाया [एरीस (Aries) 1962]।

पूर्व उपनिवेशों में जीवित रहने की दरों में परिवर्तन के इस चक्र में अभी भी विकास हो रहा है, हालाँकि विभिन्न विकासशील देशों और उनके भीतर, शहरों और गाँवों के बीच, परिवर्तन की सटीक कहानियों में बहुत बड़े अन्तर हैं। संक्षेप में, हम बचपन को जीवन की एक ऐसी अवस्था मानते हैं जिसकी खुद की कुछ विशेष माँगें हैं – इस मूल तथ्य का आधार उन विचारों में है जो कि आधुनिकता से जुड़ी वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगतियों से व्युत्पन्न हुए हैं। यह सच है कि इन प्रगतियों से पड़ने वाले प्रभाव समान रूप से वितरित होने से बहुत दूर हैं। और इस सच का मतलब यही है कि बचपन के बारे में वो पूर्व-आधुनिक विचार लुप्त नहीं हुआ है जो बचपन को अनिश्चित, अत्यधिक जोखिमग्रस्त और मानव जीवन के शुरुआती हिस्से के अपेक्षाकृत छोटे चरण के रूप में मानता है। इस सतर्कता (caution) को केवल विकासशील देशों के सन्दर्भ में नहीं पढ़ा जाना चाहिए, जहाँ आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी न तो विकसित अवस्था में है और न ही उन्हें अधिक सामाजिक समृद्धि एवं सांस्कृतिक विकास जैसे विकासात्मक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए सहज तरीके से इस्तेमाल किया गया है। प्रबोधन (Enlightenment) के कई औजार मानसिक थे, और इन औजारों की उन्नति और उपयोग ने बचपन के आधुनिक विचार को विकसित दुनिया में एक ठोस आकार देकर स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए, बाल साहित्य से जुड़े महान आलोचक पॉल हज़ार्ड (Paul Hazard) ने इंगित किया है कि निश्चितता और जीवन का पूर्वानुमान बच्चों के स्वभाव की मुख्य विशेषताएँ हैं। आतंकवाद के उदय ने और ऐसे देशों में, जो इराक पर आक्रमण को सफल बनाने के लिए एकजुट हुए थे, आतंकवाद की सैद्धान्तिक बहसों ने एक वांछनीय बचपन की इन मानसिक छवियों के लिए प्रत्यक्ष तौर पर खतरे पैदा किए हैं।

एक आधुनिक अवधारणा के रूप में बचपन का इतिहास भी आधुनिक, कल्याणकारी राज्य के आख्यान में गुँथा हुआ है। बचपन को एक संरक्षित और जीवन की लम्बी अवधि के रूप में पहचान दिलाने का श्रेय कल्याणकारी सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग द्वारा किए गए उन लोकप्रिय संघर्षों को जाता है जो 18वीं और 19वीं सदी के दौरान हुई औद्योगिक क्रान्ति के कारण मजदूरों के जीवन में आए व्यापक परिवर्तनों के सन्दर्भ में खड़े हुए थे। बच्चों की देखभाल और सुरक्षा के लिए सार्वजनिक संस्थानों की आवश्यकता को विचारों की जिस लड़ाई ने क्रमिक स्वीकृति प्रदान की, उसे इसी पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए, भले ही बच्चों की मनोवैज्ञानिक जरूरतों की स्वीकृति जीवन की किसी बुर्जुआ शैली के सन्दर्भ में पैदा हुई हो। जहाँ एक तरफ

स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए संस्थागत देखभाल का विस्तार बहुत धीमी गति से हुआ, वहीं दूसरी तरफ शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षकों, लेखकों और चित्रकारों, कहानीकारों और खिलौना निर्माताओं ने अधिक तेजी से एक नई संस्कृति का निर्माण किया जिसमें बच्चों के विशेष दावे के प्रति वयस्कों की संवेदनशीलता को खास महत्त्व दिया गया। 17वीं सदी के बाद के यूरोप का इतिहास उन घटकों पर प्रकाश डालता है जो बचपन के उदय को एक सामाजिक परिघटना के रूप में समझाते हैं और जिसे गैर-यूरोपीय दुनिया अपनी खुद की प्रगति, या "विकास" (जैसा कि आजकल इसे कहा जाता है), को पहचानने के लिए एक सन्दर्भ के रूप में आज तक उपयोग कर रही है। स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक स्वच्छता में सुधार, परिवार, एवं निजी जीवन की अपनी चिन्ताओं में मग्न एक मध्यम वर्ग का उदय, और बचपन की कसौटी के रूप में यौन अज्ञानता का विशेष वर्णन इस इतिहास के मुख्य अंश रहे हैं।

वैश्वीकरण पर बहस शुरू होने से बहुत पहले ही बचपन की यह अवधारणा वैश्विक बन चुकी थी। जबकि दुनिया के वास्तविक बच्चों की एक बड़ी संख्या गरीबी और उत्पीड़न की स्थिति में जीती रही, अपने अस्तित्व के लिए कड़ी मेहनत करती रही और अनेकों आम बीमारियों के कारण मरती रही, वहीं मध्य 19वीं सदी में गढ़ी गई बचपन की एक संरक्षित सामाजिक-मनोवैज्ञानिक श्रेणी वाली छवि (prototype) दुनियाभर में एक निर्विवाद मानक और शैक्षिक आदर्श की तरह छाई रही। यूरोप से शुरू हुए दोनों विश्व युद्धों द्वारा की गई तबाही ने यूरोपीय आदर्शों को और उभारा, जिसके चलते आगे जाकर संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में बचपन को वैश्विक चिन्ता के विषय के रूप में मान्यता मिली। 20वीं सदी के युद्ध के बाद मध्य बिन्दु में जैसे-जैसे औपनिवेशिक राष्ट्रों ने स्वतंत्रता हासिल की और लोकतंत्र को अपनाया, कम-से-कम अस्थाई रूप से, बचपन के वैश्विक आदर्श ने अपने राजनीतिक और कानूनी महत्त्व को बनाए रखा, भले ही नए स्वतंत्र राष्ट्र शिशु मृत्यु दर को नियंत्रित करने और सबके लिए स्कूली शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करने में बहुत ही सीमित सफलता प्राप्त कर सके।

वर्तमान सन्दर्भ (Current Context)

आरम्भिक 1980 के दशक से जो रुझान सामने आए हैं उनके सन्दर्भ में हम तीन व्यापक श्रेणियों : ज्ञान, संस्कृति, और अर्थव्यवस्था की मदद से बचपन पर वैश्वीकरण से सम्बन्धित कारकों के प्रभाव का विश्लेषण कर सकते हैं। इनमें से पहली श्रेणी (ज्ञान) का अर्थ सीखने से है जो कि बचपन की आधुनिक धारणा से इतनी निकटता से जुड़ा हुआ है कि ऐसे बचपन के बारे में सोचना बहुत मुश्किल है जो किसी भी तरीके से सीखने पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता हो। दरअसल जीवन के एक विशेष और लम्बे चलने वाले समय के रूप में बचपन की धारणा का

विकास हमारी आज की समझ के अनुसार सीखने की धारणा के विकास के समानान्तर हुआ है। आजकल अनुभव और गतिविधि को बचपन में सीखने की प्रक्रिया के दो महत्त्वपूर्ण आयामों के रूप में माना जाता है, और इस विशेष अर्थ में सीखने की इस धारणा के उदय का श्रेय उस बौद्धिक परम्परा को जाता है जो 18वीं सदी में रूसो (Rousseau) के साथ शुरू हुआ और इसमें फ़्रीबेल, पेस्तालोजी, मॉन्टेसरी, पियाजे और ड्युई (Froebel, Pestalozzi, Montessori, Piaget and Dewey) की प्रभावशाली कृतियाँ शामिल हैं। सोच की इस विरासत को उन सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक माँगों के, जिनकी शुरुआत औद्योगिक क्रान्ति से हुई, और प्रबोधन एवं सुधार से जुड़े हुए बौद्धिक परिवर्तन के ऐतिहासिक सन्दर्भ से जोड़कर देखा जा सकता है [ब्रूक्स (Brooks) 1969] ने संक्षेप में आधुनिक बचपन की इस जटिल विरासत को लैंगिकता से जुड़े अच्छे और बुरे के ज्ञान के सम्बन्ध में मासूमियत के रूप में ठीक ही बताया है। इस अर्थ में मासूमियत को बनाए रखना बच्चों की दुनिया को वयस्कों की दुनिया से अलग करने पर निर्भर था जो बच्चों की देखभाल के लिए खासतौर पर बनाई गई संस्थाओं के जरिए किया गया। बच्चे अपने दिन का एक बड़ा हिस्सा किसी ऐसी संस्था में बिताएँ जहाँ प्रशिक्षित वयस्क उनकी देखभाल करें, सुनिश्चित करने के एक माध्यम के रूप में सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा का क्रमिक उदय बच्चों की दुनिया को वयस्कों की दुनिया से अलग करने का एक पहलू था; एकल परिवार का उदय और आवासीय जगह की व्यवस्था के एक कारक के रूप में एकान्तता (निजता – privacy) को पहचाना जाना इसका दूसरा पहलू था।

दुनिया के इस सीमित घेरे में जहाँ बच्चों से यह अपेक्षा की गई कि वे अपनी सीखने की क्षमता का विकास करें, वहाँ प्रशिक्षित शिक्षकों ने गतिविधियों के रूप में सार्थक अनुभवों को आयोजित कराया जिनसे बच्चे जुड़ सकें। उन्होंने घर की नजदीकी परिवेश से बाहर की दुनिया के साथ बच्चों की अन्तर्क्रियाओं की प्रकृति और गति को नियंत्रित किया। एक आधुनिक संस्था के रूप में स्कूल ने बच्चे को पेशेवर तरीके से सँभाली गई एक ऐसी दुनिया में रखा जिसने बच्चे को सार्थक अनुभव प्रदान किए और ऐसे अनुभवों को हटा दिया या उनके आगे छन्नी लगा दी जो बच्चे के विकास के लिए उपयुक्त नहीं थे। यह सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण दिए गए कि वे शैक्षणिक और नैतिक दृष्टि से मजबूत पाठ्यक्रम की बच्चों की आवश्यकता को समझ सकें। इस भूमिका में शिक्षक की सहायता अन्य विशेषज्ञों ने की जिन्होंने पाठ्यक्रम को इस तरह बनाया जो यह सुनिश्चित करे कि बच्चे को दी जाने वाली जानकारी उसकी ज्ञान को ग्रहण और आत्मसात करने की क्षमता के अनुसार हो। शैक्षिक सिद्धान्तों के प्रगतिशील आन्दोलन के रूप में जाने हुए दौर में बच्चों के निकटतम वातावरण को सीखने के संसाधनों के रूप में विशेष स्थान दिया गया। ड्युई ने विभिन्न गतिविधियों और सम्बन्धों की

विशेषता रखने वाले समुदाय में बच्चों को समाजीकरण की प्रक्रिया में वातावरण की भूमिका पर जोर डालते हुए उसे पाठ्यक्रम के चार सामान्य स्रोतों में से एक बताया।

यदि हम वर्तमान घटनाओं की पृष्ठभूमि में शैक्षणिक आदर्शों की इस संक्षिप्त छवि को बचपन की आधुनिक अवधारणा के साथ ऐसे रखें कि दोनों के अर्थ का विस्तार व उसकी सीमाएँ बराबर हों, तो हम देखते हैं कि बाहरी दुनिया के साथ बच्चों के आदान-प्रदान को नियंत्रित करने के लिए उत्तरदायी संस्थानों को इस नियंत्रित करने वाली भूमिका में काम करना मुश्किल लग रहा है। यदि हम परिवार, आस-पड़ोस या समुदाय और स्कूल को देखें तो इन संस्थानों में बच्चों और वयस्कों की दुनिया के बीच मध्यस्थता एजेंसियों के रूप में काम करने की उनकी क्षमता और ऊर्जा में हम एक निश्चित स्तर की थकावट (exhaustion) को पहचान सकते हैं। बच्चों द्वारा काबिज भौतिक और बौद्धिक क्षेत्र में घुसपैठ इलेक्ट्रॉनिक प्रसार की शुरुआती तकनीकों के साथ ही शुरू हो गई थी; जानकारी या सूचनाओं की अप्रतिबन्धित हदों से बच्चों को सुरक्षित रखने की वयस्कों की क्षमता को इंटरनेट ने एक ऐसी मुश्किल चुनौती पेश की है जिसका सामना पहले कभी नहीं किया गया था। आधुनिक शिक्षणशास्त्र (pedagogy) के लिए एक प्रमुख सरोकार का विषय यौन सम्बन्धी अच्छे और बुरे के ज्ञान का नियंत्रण था। ऐसे ज्ञान को नियंत्रित करना अब और सम्भव नहीं है; इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजकल बच्चों को यौन असुरक्षा और शोषण से बचा पाना भी तेजी से कठिन होता जा रहा है।

बच्चे और पर्यटन (Children and Tourism)

बच्चे की असहायता की सामाजिक रूपरेखाएँ विकसित और विकासशील देशों में अलग-अलग हैं, लेकिन यह अवधारणा दोनों ही जगह मौजूद है और यह फैलती भी जा रही है। एक तरफ जहाँ विकसित देशों में बच्चों का यौन शोषण एक मानक संस्था के रूप में एकल परिवार के पतन और शराब, घरेलू हिंसा एवं नशीली दवाओं के प्रसार जैसे कारणों से जुड़ा हुआ है; वहीं दूसरी तरफ बहुत-से विकासशील देशों में बचपन के दौरान यौन शोषण में विस्तार उद्योग के रूप में पर्यटन में तीव्र वृद्धि से जुड़ा हुआ है। शेषाद्री और सुरेश (Sheshadri and Suresh 2004) ने तटीय भारत में आजीविका, परिवार और समुदाय पर उपलब्ध आँकड़ों की सहायता से पर्यटन और बाल शोषण के बीच की कड़ी का अध्ययन किया है। इस अध्ययन में पर्यटकों के रवाना होने वाली जगह या “प्रस्थान” (departure), जो अमूमन अमीर विकसित देश होते हैं, और मंजिलों या “गन्तव्यों” (destinations), जो तथाकथित विकासशील देश होते हैं, के बीच सांस्कृतिक एवं शक्ति सम्बन्धों से बनने वाली बड़ी तस्वीर की ओर भी ध्यान दिलाने का प्रयास किया गया है। वैश्वीकरण का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि भौगोलिक दूरियों पर अब विजय

पा ली गई है। हाल के वर्षों में पर्यटन उद्योग में हुई अभूतपूर्व वृद्धि का रिश्ता उससे है जिसे वैकरमैन (Wackermann, 1997) "सीमित करने वाले एक कारक के रूप में दूरी की सापेक्षता" की तरह सम्बोधित करते हैं। मनोरंजन क्षेत्र का विस्तार वैश्वीकरण की सांस्कृतिक विचारधारा का एक पहलू है जो विकासशील देशों में अधिक-से-अधिक मंजिलों या "गन्तव्यों" के शामिल किए जाने को उनकी उन्नति के रूप में देखता है। जब हम पारम्परिक व्यवसायों के खत्म होने और स्थानीय निवास स्थानों के पर्यटन कॉरपोरेशनों को हस्तान्तरित हो जाने के रूप में इन गन्तव्य स्थलों की आन्तरिक गतिशीलता का अध्ययन करते हैं, तो हमारे सामने वह गहरी तस्वीर उभरती है जो पर्यटन की नई अर्थव्यवस्था में हाशिए पर धकेले गए पात्रों के रूप में बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों को सामने लाती है।

पर्यटन उद्योग में बच्चों के दुरुपयोग और शोषण को अकेले गरीबी के परिणाम के रूप में देखना शायद ही सही होगा। पर्यटन उद्योग के तहत यात्रा की पैकेजिंग के लिए गरीबी एक तुलनात्मक शर्त है जो किसी जगह के गन्तव्य स्थल में विकसित होने का नतीजा है। एक समुद्रतटीय इलाके को बीच (beach) या एक जंगल को गॉल्फ़ के मैदान में बदलने के लिए यह जरूरी है कि वहाँ बसने वाले समुदायों को उखाड़ दिया जाए और उनके परम्परागत व्यवसायों को नष्ट कर दिया जाए। इन प्रक्रियाओं के चलते बच्चे पर्यटन उद्योग में शामिल होने के लिए विवश हो जाते हैं। शुरुआत में वे रूम सर्विस या छोटी-मोटी वस्तुओं की बिक्री करते हैं, पर अन्ततः वेश्यावृत्ति तक पहुँच जाते हैं। बैंकॉक और गोवा जैसे अत्यधिक विकसित एवं सफल गन्तव्य स्थलों के अध्ययनों से इस बात के पर्याप्त सबूत मिलते हैं कि वैश्वीकरण के तत्वावधान में हो रही पर्यटक यात्राओं के व्यापारीकरण और विस्तार ने बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। बच्चों की तस्करी भी इस कदर बढ़ गई है कि बाल अधिकारों की रक्षा करने के अभियान इनसे निपटने में नाकाम रहे हैं।

स्कूली शिक्षा, पहचान और संघर्ष (Schooling, Identity and Conflict)

वयस्क व्यस्तताओं और चिन्ताओं की दुनिया और बचपन की दुनिया के बीच एक आड़ के रूप में स्कूल की भूमिका भी नए तरीके के तनाव महसूस कर रही है। ज्ञान और जानकारी के बीच का अन्तर एक प्रमुख स्पष्ट भेद है जिसकी मदद से संचार की प्रौद्योगिकियों की तुलना में स्कूलों की विशेष जिम्मेदारी की पहचान की जा सकती है। यह अन्तर स्कूलों द्वारा एक ऐसा माहौल देने की क्षमता पर निर्भर है जिसमें बच्चे, बनाए गए पाठ्यक्रम (designed curricula) और प्रशिक्षित शिक्षकों के रूप में उपलब्ध बौद्धिक संसाधनों का उपयोग कर अपने अनुभवों को अर्थपूर्ण बना सकें और इस तरह ज्ञान का निर्माण कर सकें। वैश्वीकरण ने आधुनिक शिक्षा के

प्रतिस्पर्धी स्वभाव को बल दिया है और शिक्षा के सभी राष्ट्रीय तंत्रों को शिक्षण के मापे जा सकने वाले परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए मजबूर कर दिया है जिससे कि पुराने मापदण्ड और प्राथमिकताएँ, जो बच्चों के सीखने के अनुभवों की गुणवत्ता पर ध्यान देती हैं, अप्रासंगिक और अलोकप्रिय बन गई हैं। शिक्षा नीति में अनुभव की जगह परिणाम केन्द्रित शिक्षण के इस बदलाव ने सूचना और ज्ञान के बीच अन्तर को धुँधला कर दिया है। एक पेशेवर गतिविधि के रूप में शिक्षण पर इसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। अब एक शिक्षक को उस सर्वव्यापी ज्ञान कार्यकर्ता में बदलना आसान हो गया है जिसे अपना दिमाग लगाने की जगह सिर्फ दिए गए निर्देशों का पालन करना होगा। इससे शिक्षकों को हल्के में लिया जाता है और ऐसा समझा जाता है कि उनकी जगह उन जानकारी देने वाली मशीनों से काम बन सकता है जो ग्राहकों को अपने स्व-शिक्षा पैकेजों से आकर्षित कर रही हैं। जानकारी और ज्ञान के बीच अन्तर न कर पाने से एक और महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन यह आया है कि जो शिक्षा पहले पीढ़ी दर पीढ़ी समुदाय में अनकहे तौर पर हस्तान्तरित हो रही थी उसे जीवित रहने के लिए अब एक स्पष्ट या सूचनात्मक चरित्र अपनाना पड़ रहा है। बच्चे को जीने के तरीके से अवगत कराने का अवसर बदलकर दस्तावेज तैयार करने की तीव्र आवश्यकता बन गई है और सामुदायिक जीवन किसी न किसी खतरे का सामना कर रहा है, मसलन अनजाने प्रतीकात्मक रूपों और मूल्यों का प्रवेश या उनके सामने समर्पण।

अनकहे या निहित से प्रकट की ओर सांस्कृतिक ज्ञान की इस कायापलट से हुआ यह है कि अपनी संस्कृति के साथ बच्चे के सम्बन्ध में एक खुरदुरापन आ गया है। जब एक संस्कृति के हरेक छोटे-से-छोटे पहलू को प्रकट रूप में बच्चों तक प्रेषित किया जाए, जब इसे जान-बूझकर किसी न किसी माध्यम में सायास दर्ज किया जाए तो वयस्क और बच्चे के सम्बन्धों में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण अंश नष्ट हो जाते हैं। कभी यह वयस्कों के आचरण में सूक्ष्मता के अभाव के रूप में व्यक्त होता है तो कभी यह वयस्कों की सत्ता के हनन के रूप में व्यक्त होता है। सितारों, टीवी और रेडियो के उद्घोषकों और प्रस्तुतकर्ताओं के एक विशाल और विविध जमावड़े के बरअक्स वयस्कों को अभिभावक की भूमिका में खड़ा करके नए वैश्विक मीडिया ने एकल परिवारों में वयस्कों और बच्चों के बन्धन पर चोट की है। ये बन्धन उस समुदाय से अलगाव के कारण पहले से ही कमजोर हो चुके थे जिसका कि वह परिवार हिस्सा हो सकता था, भले ही महज काल्पनिक तौर पर ही सही। कुछ मामलों में समुदाय की साझी यादों का बच्चों में प्रसारण इतनी तेजी से रोक दिया जाता है कि अस्मिता या पहचान सांस्कृतिक आदर्शों के लिए प्रेरणा का साधन बनने की बजाय खुद अपने-आप में एक लक्ष्य या उद्देश्य बन जाती है। ऐसी परिस्थितियाँ उभरती हैं जिनमें अस्मिता या पहचान के मुद्दों, पवित्र ग्रन्थों की व्याख्या और

राजनीति में धर्म की भूमिका पर संघर्ष का अखाड़ा बनने का खतरा हो। यद्यपि वैश्वीकरण शब्दश: जो सुझाता है वह चेतना का फैलाव है, पर असलियत में यह चेतना के स्थानीयकरण (localisation) का कारण बनता जा रहा है। यह स्थानीयकरण संस्थागत वैश्विक सत्ता की आवाज में बोलने और काम करने वाली ताकतों के खिलाफ बचे खुचे समुदायों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप और आंशिक तौर पर अपनी पहचान खोने के डर से पैदा हुई अनिश्चितता और भ्रम की प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप हो रहा है। तकनीकी आर्थिक प्रक्रियाओं (techno-economic processes) के फलस्वरूप हुई व्यावसायिक पहचानों की क्षति ने पहचान निर्धारित करने में धर्म को एक बड़ी भूमिका दे दी है [ह्यूस (Huws) 2006]।

रूढ़िवाद का प्रभाव (Effect of Fundamentalism)

रूढ़िवाद इस विकास की एक अभिव्यक्ति है। यह आज दुनियाभर में कई अलग-अलग सन्दर्भों में बढ़ रहा है, न केवल उन समाजों में जिन्हें अविकसित या अनपढ़ कहा जाता है बल्कि अत्यधिक विकसित समाजों में भी [मार्टी एवं एपलबी (Marty and Appleby) 1993]। एक विचारधारा के रूप में रूढ़िवाद जिस तरह प्रभाव डालता है, उसमें और वयस्क एवं बच्चों के रिश्ते के जरिए सांस्कृतिक प्रसारण पर पड़ने वाले प्रभावों के बीच एक कड़ी है। इन दोनों प्रसारणों को, जिनमें विनाश का भाव है, एक चरम स्तर की निश्चितता और सूक्ष्मता का अभाव चिह्नित करता है। माता-पिता की यह तीव्र इच्छा होती है कि जितनी जल्दी हो सके वे बच्चे के अन्दर अपने सबसे महत्त्वपूर्ण मूल्यों और संस्कृति के मानदण्डों को संचरित कर सकें और बच्चे को स्पष्ट और विशिष्ट तरीकों से सामाजिक बना सकें। उनकी इस तीव्र इच्छा का कारण इस डर में निहित है कि थोड़ी-सी भी देरी बच्चे को गलत रास्तों पर चलने वाली दुनिया में बहुत दूर तक ले जाएगी। इसलिए इससे पहले कि बच्चा वैश्विक दुनिया के अँधेरे में खो जाए, माता-पिता अपने अनुसार बच्चे पर छाप छोड़ने की कोशिश करते हैं। संस्कृति एवं धर्म को लेकर रूढ़िवादियों के दृष्टिकोण में भी इसी तरह की तीव्र उत्कण्ठा और डर देखा जा सकता है। यह दृष्टिकोण अच्छाई और बुराई के बीच अन्तिम लड़ाई के रूपक से प्रेरित है। सामाजिक नाटकों में मौत की कल्पना का प्रचुर उपयोग होता है जिसे रूढ़िवादी विचारधाराएँ या तो राज्य की विचारधारा के रूप में (जैसा कि अमरीका में है) या एक ऐसे संगठन की विचारधारा के रूप में, जो हिंसा और आतंक के लिए प्रतिबद्ध है, समर्थन जुटाने और वैधता हासिल करने के लिए उपयोग करती हैं। शिक्षा के लक्ष्य को एक प्रतिबद्ध, स्पष्ट रूप से व्यक्त पहचान के रूप में देखा जाना रूढ़िवादी विचारधारा के लिए सुविधाजनक है, जो कि युवाओं की शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण भविष्यवादी (futuristic) विषय मानती है। कई देशों में शिक्षा के तंत्र, सामूहिक पहचान के एकीकरण के लिए एक बाध्यकारी शक्ति के रूप में काम करने की माँग के प्रति उत्तरदायित्व दिखा रहे हैं।

कई समाजों में इस बात को लेकर झड़पें (skirmishes) हो रही हैं कि शिक्षा किस तरह की पहचान को बढ़ावा दे और किस तरह अलग-अलग समूहों के हितों को इसमें समावेशित किया जाए। विकसित और विकासशील, दोनों तरह के देशों की अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण से सम्बन्धित घटनाक्रमों ने पहचान की भूमिका को बढ़ावा दिया है जिसके फलस्वरूप जगह-जगह संघर्ष और सशस्त्र टकराव उत्पन्न हो रहे हैं। यद्यपि बच्चे इस पहचान के संघर्ष में हाशिए पर खड़े प्रतीत होते हैं, लेकिन अगर हम इस पहचान की राजनीति में शिक्षा को दिए जा रहे महत्त्व पर ध्यान दें, तो हम यह जान सकते हैं कि पहचान के मतभेदों से हो रही प्रतीकात्मक और वास्तविक लड़ाइयों में बचपन का कितना महत्त्व है।

उन देशों में जहाँ कि जातीय या उप-राष्ट्रीय पहचानों में निरन्तर सशस्त्र संघर्ष हो रहा है, बच्चों को सक्रिय रूप से युद्ध के लिए भर्ती किया जा रहा है और उनकी शिक्षा को हथियारों के इस्तेमाल के प्रशिक्षण में बदल दिया गया है। बुरुंडी (Burundi), कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य, और श्रीलंका जैसे देशों में बच्चों को सक्रिय रूप से उस समूह में निष्ठा रखना सिखाया जा रहा है जो बच्चों को सशस्त्र सैनिकों की तरह कार्य करने को मजबूर करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों से उत्पन्न आय को (राज्य समेत) उन विभिन्न पक्षों द्वारा हथियारों की खरीद में लगाया जा रहा है जो कि सशस्त्र संघर्ष में लगे हैं। लगभग इन सभी मामलों में राज्य विकसित देशों के हथियार आपूर्तिकर्ताओं के समक्ष मजबूर हो जाते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) के मार्गदर्शन में अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक सुधारों (structural adjustment) से राज्य के कमजोर होने की निरन्तर प्रक्रिया का नतीजा है। यह मार्गदर्शन वैश्वीकरण का सामना करने के लिए क्षमता निर्माण के नाम पर प्रचारित किया जा रहा है।

अफ्रीका के कर्ज में डूबे देशों पर संरचनात्मक सुधार कार्यक्रम (structural adjustment programme – SAP) के प्रभाव को यूनिसेफ़ (UNICEF) की स्टेट ऑफ़ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन (State of the World’s Children) रिपोर्ट, 1989 में उभारा गया है। इस रिपोर्ट में वर्णित स्थिति हाल के वर्षों में और खराब हुई है जिसकी वजह से हिंसक संघर्ष, जिनमें बच्चों को अब सीधे सैनिकों के रूप में शामिल किया जा रहा है, गहरा रहे हैं। राजनीतिक या नृजातीय घरेलू संघर्षों में बच्चों का इस्तेमाल दुनिया के कई और हिस्सों में हो रहा है। उदाहरण के लिए, श्रीलंका और नेपाल जैसे देशों में युद्ध में इस्तेमाल होने वाले हथियार, वैश्विक हथियार व्यापार के माध्यम से बच्चों तक पहुँच रहे हैं। यह व्यापार राष्ट्रीय सीमाओं की नरमी और कॉर्पोरेट

ताकतों की इन सीमाओं में पैठ करने के सीधे परिणाम के रूप में बड़े स्तर पर पहुँचा है और दूरदराज के इलाकों में पहुँचने की क्षमता रखता है।

अन्तर्निहित प्रभाव (Implicit Effects)

बचपन पर वैश्वीकरण के जिन प्रभावों पर हमने ऊपर चर्चा की उसके अलावा भी कई अप्रत्यक्ष प्रभाव हैं जिनका अध्ययन काफी जटिल और मुश्किल भरा है। ये प्रभाव उन परिवर्तनों से सम्बन्धित हैं जो विकसित और विकासशील, दोनों तरह के वैश्वीकरण उन्मुख विभिन्न देशों की आर्थिक नीतियों की वजह से कृषि और उत्पादन के अन्य प्राथमिक रूपों से सम्बन्धित रोजगारों और काम के अवसरों में हो रहे हैं। दूर देशों में सेवा क्षेत्र की नौकरियों का स्थानान्तरण और दुनियाभर में उत्पादन के विभिन्न चरणों का बिखराव इस बदलाव के अपेक्षाकृत प्रत्यक्ष चेहरे हैं जिन्हें अन्तरराष्ट्रीय कम्पनियों ने बहुत कम समय में एक साकार रूप दे दिया है। इस बदलाव का अपेक्षाकृत कम दिखाई देने वाला चेहरा उन प्रभावों से सम्बन्ध रखता है जो परिवारों के रोजगार पैटर्न पर पड़ते हैं। ह्यूस (Huws 2003) उन कुछ शिक्षाविदों में से एक हैं जिन्होंने इन प्रभावों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। उनके शोध दिखाते हैं कि हम परिवार के सम्बन्धों, बच्चों के पालन पोषण और समाजीकरण में एक मौलिक प्रकृति के परिवर्तनों को देखने की उम्मीद कर सकते हैं। उनकी पड़ताल यह भी इंगित करती है कि किस तरह रोजगार के पैटर्नों में बदलाव की वजह से मूल्यों में भी बदलाव हो रहा है। हमने इसी जाँच का विस्तार कृषि क्षेत्र में किया और उन बदलावों का विश्लेषण किया जो ग्रामीण परिवेश में हो रहे हैं। जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति का दुरुपयोग कृषि व्यापार कम्पनियों ने छोटे किसानों के बड़े वर्गों को आर्थिक रूप से असहाय बनाने के लिए किया। कई अफ्रीकी और लैटिन अमरीकी समाजों ने पिछले कुछ दशकों में नकदी फसलों की माँग में उतार-चढ़ाव के कारण इन किसानों पर हुए विनाशकारी प्रभावों को देखा है। आनुवंशिक रूप से संशोधित बीजों के प्रवेश के साथ किसानों की हालत बदतर होने की सम्भावना बढ़ गई है जैसा कि हम पहले ही भारत में देखना शुरू कर चुके हैं जहाँ 40,000 से अधिक किसानों ने आनुवंशिक रूप से संशोधित कपास को बोने के खर्चे के ऋण का सामना न कर पाने की वजह से आत्महत्या कर ली है [दाण्डेकर एवं अन्य (Dandekar et al) 2005]

इस तरह की अभूतपूर्व सामाजिक घटना के परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं पर असर की पड़ताल अभी तक शुरू भी नहीं हुई है। विद्वानों ने सिर्फ एक निश्चितता की ओर संकेत किया है कि शहरों की ओर पलायन लगातार बढ़ेगा और शिक्षा प्रणाली को भूख व असमानता दूर करने के लिए एक अकल्पनीय पैमाने पर चुनौतियों का सामना करना होगा। तबाह हो रही कृषि

अर्थव्यवस्थाएँ और प्राकृतिक निवास भी विकसित देशों पर दबाव बनाएँगे जैसा कि वास्तव में पलायन की वजह से पहले से ही हो रहा है। बच्चों के बहुत अलग-अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आने, शिक्षकों की कमी और शिक्षण में प्रोफ़ेशनल प्रबन्धन की वजह से हो रहे बदलावों की वजह से शिक्षा प्रणाली की धारण क्षमता की कड़ी परीक्षा हो रही है। तीसरी दुनिया के कई देशों में, सरकारों पर शिशु संरक्षण और शिक्षा जैसी कल्याणकारी गतिविधियों को छोड़ने के लिए तीव्र वैचारिक दबाव डाला जा रहा है। इस विकास का एक परिणाम तो निजीकरण है और दूसरा न्यूवेनहुई (Nieuwenhuya 1998) के शब्दों में, गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से संचालित एक वैश्विक दान बाजार में बढ़ोतरी हुई है। इन घटनाओं से ये संकेत मिलता है कि यूरोपीय बुर्जुआ बचपन के प्रसार से कभी उपनिवेशी रहे देशों में एक प्रेरणादायक भ्रम पैदा हो रहा है।

हमारा विश्लेषण इस व्यापक निष्कर्ष की ओर इंगित करता है कि रचनात्मक रूप से बचपन और कल्याणकारी सरकार / राज्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण राष्ट्रीय सीमाओं को कमजोर करता है और राज्य को निर्बल बनाता है। इससे परम्परागत रूप से सरकार द्वारा संचालित क्षेत्रों, जैसे कि शिक्षा और स्वास्थ्य में निजी व्यापारों को घुसने के बहुत सारे अवसर और खूब स्वतंत्रता मिलती है। अधिकांश विकासशील समाजों में अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण और कल्याणकारी योजनाओं से सरकार का पीछे हटना साथ-साथ घटी हैं, जिससे बच्चे और महिलाएँ नकारात्मक रूप से प्रभावित हुए हैं। यही प्रक्रिया विकसित देशों में भी हुई है जहाँ सामान्य तौर पर श्रमजीवियों के साथ ही अप्रवासी समुदाय भी विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। इस तेज रफ्तार तकनीकी परिवर्तन के कारण, जिसे शिष्टोक्ति (euphemistically) में “ज्ञान अर्थव्यवस्था” कहा जाता है, श्रमजीवी वर्ग और उनके काम की प्रकृति भी प्रभावित हो रही है। बचपन एक वर्ग के रूप में उस सांस्कृतिक सीमान्त का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ आधुनिकीकरण की परियोजना वैश्वीकरण से खतरा महसूस कर रही है। इस विडम्बना की एक व्यवस्थित जाँच के लिए जिन लक्षणों और कारकों का अध्ययन जरूरी है उनकी संख्या काफी बड़ी है और उनमें से कुछ की ओर इस लेख में इशारा किया गया है। यह परिघटना अपने-आप में एक बड़ी विडम्बना है क्योंकि ऊपरी तौर पर यह प्रतीत होता है कि वैश्वीकरण ही आधुनिकीकरण का सार है।

Email: director.ncert@nic.in

[यह लेख सितम्बर 2006 में सेंटर फॉर मॉडर्न ओरिएन्टल स्टडीज़, बर्लिन (Centre for Modern Oriental Studies, Berlin) में आयोजित एक संगोष्ठी में प्रस्तुत किया गया। लेखक ने जो एथिएली (Joe Athialy) का आभार व्यक्त किया है जिन्होंने इस लेख के लिए महत्त्वपूर्ण संसाधन सामग्री जुटाई।]

सन्दर्भ सूची (References)

Amnesty International (2004): 'Burundi: Child Soldiers-The Challenge of De-Mobilisation' AFR, Amnesty International, November 16.

– (2003): 'Democratic Republic of Congo: Children at War', AFR, 62/034, Amnesty International.

Aries (1962): 'Centuries of Childhood', Jonathan Cape, London.

Baran, Paul A (1957): 'The Political Economy of Growth', Monthly Review Press, New York.

Brooks, Peter (1969): 'The Child's Part', Beacon Press, Boston.

Custers, P (2006): 'Globalisation and War, Ivory Coast', *Economic and Political Weekly*, 41: 19, May 13, pp 1848-51.

Dandekar, A et al (2005): 'Causes of Farmer Suicides in Maharashtra: An Enquiry', final report submitted to the high court, Tata Institute of Social Sciences, Rural campus, Tuljapur.

Equations (2004): *Towards Strengthening Rights of Minors and Adolescents in Tourism*, Equations, Bangalore.

Galeano, E (1998): 'The Open Veins of Latin America', 25th Anniversary edition, Monthly Review Press, New York.

Halperin, R and B Ratteree (2003): 'Where Have All the Teachers Gone? The Silent Crisis', *Prospects*, 33:2, June, pp 133-38.

Huws, Ursula (2003): 'The Making of a Cybertariat', Monthly Review Press, New York.

– (2006): 'What Will We Do? The Destruction of Occupational Identities in the 'Knowledge- based Economy", *Analytical Monthly Review*, January 2006, pp 17-30.

Marty, M E and R S Appleby (eds.) (1993): *Fundamentalisms and Society*, University of Chicago Press, Chicago.

Pluss, C (1999): *Quick Money-Easy Money? A Report on Child Labour in Tourism*, Arbeittskries Tourismus and Entwicklung, Basel, Switzerland.

UNICEF (1989): *State of the World's Children*, New York, US.

Wackermann, G (1997): 'Transport, Trade, Tourism and the World Economic System', *International Social Science Journal* (151), pp 23-39.

●●